Nav Jyoti, Vol. 5, No. 11, July-December 2017 ISSN : 2249-7331

भारतीय संस्कृति और स्वास्थ्य

डॉ0 राकेश प्रताप शाही
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
श्री भगवान महावीर पी0 जी0 कालेज, पावानगर (फाजिलनगर) कुशीनगर

प्रस्तावना

भारत की प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृति की झाँकी, हमें भारत के महिमामयी भूगोल, दर्शन, धर्म, संतों की प्यार भरी किन्तु क्रांतिकारी वाणी, लोकपर्व, लोकसंगीत और लोक साहित्य में मिलती है। यदि हम कहे कि इसका समन्वित रूप ही भारतीय संस्कृति है तो अतिश्योक्ति न होगी। भारतीय संस्कृति के विकास में जितना योग उत्तरवासियों का है उतना ही दक्षिणवासियों व अरण्यवासियों का भी है। भारतीय जीवन के ताने–बाने ऐसे हैं कि इसका प्रत्येक सदस्य अपनी विशिष्टता खोए बिना समष्टिगत एकता को सुदृढ़ करता है। जीवन के प्रति उदार दृष्टिकोण, सहिष्णुता, अतिथि सत्कार, सत्याचरण और जीओ और जीनों दो का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषताएं हैं। भारत की माटी तथा पानी का प्रभाव ही कुछ ऐसा है कि जो यहाँ आया यहीं के रंग में रंग गया। संस्कृति शब्द का शाब्दिक अर्थ है, अच्छी स्थिति। यह शब्द संस्कृत भाषा (सम्, कृ. क्तिनी) के धातु उपसर्ग एवं प्रत्यय के संयोग से बना है। संस्कृति शब्द से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिसमें उसे सुधरा हुआ, ऊँचा या सभ्य आदि विशेषणों से विभूषित किया जा सके। मानसिक एवं अध्यात्मिक शक्तियों के विकास की समुचित व्यवस्था ही किसी संस्कृति का मुख्य उद्देश्य होता है। भारतीय संस्कृति प्राचीन विचारों को खोये बिना प्रत्येक नये विचार को आत्मसात करती है। सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के आसन के ऊपर जो महावाक्य स्वर्णाक्षरों में अंकित है, वह महावाक्य है– 'धर्मो रक्षति रक्षितः'। इस महावाक्य में भारतीय न्याय का उद्घोष है जिसमें भारतीय संस्कृति का समस्त रहस्य छिपा हुआ है।

भारतीय संस्कृति पर वेदों और उपनिषदों का अमिट प्रभाव है। उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है। ऐतरेय उपनिषद में उस परम सत्य के आध्यात्मिक स्वरुप की ओर अग्रसर होने की चर्चा है। प्रश्नोपनिषद सर्वसाधारण रूप से तत्वज्ञानीय समस्याओं का विवरण चर्चा के माध्यम द्वारा करता है, जब कि 'विद्या' अथवा ज्ञान के विज्ञान का विश्लेषण 'परा' और 'अपरा' वर्ग में करने पश्चात् मांडूक्य उपनिषद 'परा' विद्या का दर्शन मुक्ति और आनन्द के गीत से कराता है। कठ उपनिषद की अपनी एक स्वतंत्र श्रेणी है। काव्य की मधुरता, गूढ़ तत्व की गहनता और तत्वज्ञान की शक्ति को स्वयं में मिलाकर एक साथ कोई अन्य उपनिषद में न पाए जाने वाले वेदान्तिक तत्वज्ञान का आविष्करण इस उपनिषद में है। युवा शिष्य नचिकेता और वयस्क गुरू यमराज इन दो भूमिकाओं द्वारा सजाए गए प्रश्नोत्तरों द्वारा इस उपनिषद की रंजकता उच्च सीमा पर पहुँची है। युवावस्था से स्पंदित जीवन की भयानक मृत्यु के द्वार पर दस्तक देकर जीवन और मृत्यु के परे होने वाले ज्ञानामृत को खींचकर लाने वाले जिज्ञासु और निर्भय नचिकेता का यह मनोहारी प्रसंगवर्णन है।

बृहदारण्यक उपनिषद चिंतन और अंतःप्रेरणा का एक यथार्थ वन है। उसके अंतरंग से चार उत्कृष्ट व्यक्तित्व प्रमुख रूप से हमारे सामने आते हैं, दो पुरूष और दो महिलाएं– तत्वज्ञानी राजा जनक, तत्वदर्शी ऋषि याज्ञवल्क्य, उच्च आध्यात्मिक मैत्रेयी जो याज्ञवल्क्य की पत्नी थी और याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्र चर्चा में उनके प्रमुख प्रतिद्वन्दी के रूप में है उच्च ज्ञानी स्त्री, गार्गी। परमब्रह्म का विशेष गुण निर्भयता है– यह बताने का साहस वह करता है और उसकी अनुभूति माने यहीं और तत्काल परम निर्भयता और पूर्णानन्द की प्राप्ति है।

भारतीय संस्कृति और स्वास्थ्य

भारतीय संस्कृति धर्म परायण रही है। सदाचार जिसका मूल तत्व है। अगर व्यक्ति में मानुष भाव और अनुशंसता का भाव न हो तो ऐसा व्यक्ति समाज पर बोझ बनता है, उसे समाज का शोषक कहा जाा सकता है, उसमें आसुरी विचारधाराओं की प्रधानता हो जाती है, वह संकीर्णता, स्वार्थपरता, मोह और

आसक्ति से भरा होता है। इस वृत्ति को अधर्म कहा गया है।[1] भारतीय संस्कृति में स्वास्थ्य नियमों एवं स्वास्थ्य संबंधी परंपराओं के बीज बहुत गहरे हैं। भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से भी पहले स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता दृष्टिगोचर होती है। हमारे देश में स्वास्थ्य के नियम जो परम्परागत रूप से चले आ रहे वे यहाँ के ऋषियों–मुनियों की हजारों वर्षों की तपस्या का फल है। भारतीय मनीषियों ने न केवल मानव शरीर पर गहन अध्ययन व प्रयोग किये बल्कि मानव मन व मस्तिष्क के अति गूढ़ रहस्यों को जानने की चेष्टा भी की। वैज्ञानिक व तार्किक दृष्टिकोण से मनन किया तभी तो योग जैसी उत्कृष्ट विद्या व आयुर्वेद जैसी उपचार प्रणाली विकास संभव हो सका। हमारी संस्कृति में स्वास्थ्य नियम इतने अकाट्य, वैज्ञानिक व तार्किक हैं कि अभी भी उन पर शोध होना बाकी है परन्तु जो कुछ समझा गया है उनसे प्रमाणित होता है कि वह अत्यन्त वैज्ञानिक ही हैं और यहाँ की जलवायु, प्राकृतिक वातावरण, मानव शरीर व स्वभाव के अनुरूप ही हैं।[2]

भारतीय संस्कृति में स्वास्थ्य की महत्ता इसी से समझ लेनी चाहिए कि यह भारत ही है जहाँ प्रातः जागरण से रात्रि शयन तक प्रत्येक दैनिक क्रिया के नियम हैं जो मानव के उत्तम स्वास्थ्य कल्याण के लिए ही बनाए गए अपनाए गए हैं। उदाहरणतः प्रभु नाम स्मरण कर उठना, ताजी हवा में व्यायाम या भ्रमण, स्नान, फिर सूर्य उपासना व अर्घ्य देना ताकि मानव शरीर स्वास्थ्यप्रद सूर्य रश्मियाँ ग्रहण करें, आदि सभी नियमों व धार्मिक संस्कारों का मूल तत्व मानव स्वास्थ्य ही था। भारतीय संस्कृति में सूर्योपासना का बड़ा महत्व है। सूर्य की पूजा व अर्घ्य के अनेकों मंत्र हमारे ग्रंथों में मिलते हैं। इन सबका कारण यही है कि हमारे स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन का आधार सूर्य की किरणों से भावित शुद्ध हवा है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए बालक के जन्म के चौथे माह में हमारी संस्कृति में निष्क्रमण संस्कार का विधान किया गया था। इस संस्कार के समय बालक को विधिपूर्वक सूर्य दर्शन कराया जाता था व कामना की जाती थी – त्वं जीव शरदः शतम वर्धमान।[3] आज हम अपना समय पंखों व कूलरों वाले या वातानुकूलित कमरों में व्यतीत करते हैं तो अच्छा स्वास्थ्य कैसे रख सकते हैं।

मनुष्य का जीवन श्वास पर निर्भर करता है। सूर्य की रश्मियों से भावित शुद्ध वायु का गहरा सांस सौर शक्ति से भरा होता है इसी लिए प्रातःकाल का समय योग, सैर व व्यायाम के लिए उत्तम माना गया है। जब सौर शक्ति से अनुभावित शुद्ध वायु को हम फेफड़ों से भरते हैं तो हमारे अंग–प्रत्यंग में वैद्युतिक शक्ति का संचार होता है। यह शक्ति शरीर रूपी यंत्र व्यवस्था का नवीनीकरण कर देती है। भारतीय शास्त्रों में इसे प्राण शक्ति की संज्ञा दी गई है। इस शक्ति में जीवन को स्वस्थ बना दीर्घ आयु प्रदान करने की अपूर्व क्षमता है।[4] इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि पूर्ण है जिससे ऐसा मानव सजीव आयुष्य भावनामय होता है। हम सौ वर्ष तक देखें। सौ वर्ष तक सांस लें। सौ वर्ष चिन्तक करें। शत वर्ष तक अभिवृद्धि प्राप्त हों। सौ वर्ष तक पुष्ट हों। शत वर्ष संपूर्ण हों। शत वर्ष तक सुनें। शतवर्ष तक वाणीमय हों। सौ वर्ष तक पराश्रित न हों। हम शत से भी अधिक वर्षों तक देखें, सांस लें, विचारें, बढ़ें, पुष्ट हों, बनें रहें, भव्य हों, सुनें, बोलें तथा अदीन हों। यह औद्योगिक स्वास्थ्य की वैदिक संकल्पना है।[5]

शारीरिक विकास, भातीय संस्कृति का मुख्य अंग वैदिक काल से ही माना जाता रहा है। वेदों में सौ वर्षों तक जीवित रहनें की आकांक्षा व्यक्त की गई है और वह भी इंद्रियों के सशक्त रहते हुए। वैदिक काल में मानव जीवन के विभिन्न पहलू इस प्रकार विकसित किए गए कि वह शारीरिक विकास में सहायक होते थे। प्राचीन मनीषियों ने शरीर रचना को भली–भाँति समझ लिया था। उन्हें ज्ञात था कि शरीर की रक्षा व पुष्टि के लिए वायु जल व अन्न अत्यंत आवश्यक हैं। शारीरिक विकास के आयोजन का विवेचन गीता में भी अच्छी तरह मिलता है– जिसका आहार–विहार व विभिन्न कार्य नियमित हैं, वह जो नियमपूर्वक सोता व जागता है उसके सब दुख योग द्वारा दूर किए जा सकते हैं।

जिस प्रकार हमने समय की, प्रकाश की चाल का तथा अनेक प्रकार की गतियों को नापने के पैमाने बनाये तो आनन्द की राशि का भी पैमाना बनाया। तैतरीय उपनिषद के आठवें अनुवाक में इसका बहुत सुन्दर उदाहरण है। एक श्रेष्ठ आचरणों वाला, सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता, शासन करने में कुशल युवा मनुष्य हो। उसके सम्पूर्ण अंग और इन्द्रियाँ रोग रहित समर्थ और सुदृढ़ हों। वह सब प्रकार के बल से सम्पन्न हो। उसे यह धन सम्पत्ति से परिपूर्ण पृथ्वी प्राप्त हो जाय तो मनुष्य लोक का एक आनन्द है। इस प्रकार के सौ आनन्द यदि एकत्र कर लिए जाय तो वह समस्त राशि मनुष्य गंधर्व के एक आनन्द

के समान है। मनुष्य गंधर्व के इस प्रकार के सौ आनन्द देव गंधर्व के एक आनन्द के समान है। देव गंधर्वों के सौ आनन्द पितरों के एक आनन्द के समान हैं। पितरों के ऐसे सौ आनन्द अजानज देवता का एक आनन्द है। अजानज देवता के ऐसे सौ आनन्द कर्मदेव नामक देवता के एक आनन्द के बराबर है। कर्म देव नामक देवता के इस प्रकार के सौ आनन्द यदि एकत्रित कर लिये जायें तो वह देवताओं के एक आनन्द के बराबर है। देव लोक के इस प्रकार के सौ आनन्द इन्द्र देवता का एक आनन्द है । इन्द्र के इस प्रकार के सौ आनन्द वृहस्पति कि एक आनन्द के समकक्ष है।। वृहस्पति के ऐसे सौ आनन्द प्रजापति का एक आनन्द मात्र है। और प्रजापति के सौ आनन्द ब्रह्मा का एक आनन्द है। उपनिषद यहाँ पर आकर आनन्द की एक सीमा कर देता है। यही शायद आनन्द की सीमा है क्योंकि ब्रह्मा की भी एक निश्चित आयु है।[6]

स्वास्थ्य में यज्ञ की भूमिका

शारीरिक विकास के लिए वायु, जल व अन्न की पूर्ण शुद्धि आवश्यक है। इस पर ध्यान न देने से नाना प्रकार के रोग हो सकते हैं व आनंदमय जीवन समाप्त हो सकता है। शुद्ध वायु एवं शुद्ध वातावरण के लिए ही भारतीय संस्कृति में यज्ञ का प्रावधान किया गया है, यज्ञ की महिमा का वर्णन विभिन्न धर्म ग्रन्थों में मिलता है। यज्ञ में घी, चन्दन, कस्तूरी आदि नाना प्रकार के सुगंधित द्रव्यों के होम करने से जो धुआँ उठता था उसमें अनेक रोगों के कीटाणुओं को दूर करने की क्षमता विद्यमान रहती थी। यज्ञ व अग्निहोत्र वायु शुद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डॉ0 सत्यप्रकाश, डी0 एस0 सी0 ने अग्निहोत्र पर विज्ञान की दृष्टि से एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'अग्निहोत्रा'। उन्होनें दर्शायाा कि इसमें ऐसे तत्व होते है जिनमें फौरमेल्डीहाइड गैस उत्पन्न होती है। यह गैस बिना परिवर्तित हुए वायुमंडल में फैल जाती है। फौरमेल्डीहाइड एक शक्तिशाली कीटाणुनाशक यौगिक है जिससे वायु शुद्ध होती है व रोग के कीटाणु नष्ट होते हैं। फौरमेल्डीहाइड का प्रभाव तभी होता है जब वह पानी के वाष्पों का साथ हो। इसलिए अग्निहोत्र के समय भरपूर जल का प्रयोग किया जाता है व यज्ञ वेदी के चारों ओर जल सींचन किया जाता है ताकि रोगाणुनाशक फौरमेल्डीहाइड अपना पूर्ण प्रभाव दिखा सके व वायुमंडल शुद्ध कर सके।[7] डॉ0 फुन्दन लाल एम0डी0 ने यज्ञ चिकित्सा नामक एक ग्रन्थ (1949) में परीक्षणों द्वारा यज्ञ के महत्व को स्पष्ट किया। वह स्वयं एक ऐलोपैथिक चिकित्सक थे परन्तु सब कुछ छोड़कर क्षय रोग की यज्ञ द्वारा चिकित्सा करने में जुट गए थे। उन्होंने जबलपुर में एक टी0बी0 सैनिटोरियम भी खोला।

यज्ञ का एक अन्य लाभ यह भी है कि यह अनावृष्टि के समय वृष्टि की कमी को दूर करने में भी सहायक होता है। यज्ञ में घी का प्रयोग वर्षा लाने में सहायक होता है। घी के अणु वर्षा बरसाने में अपूर्व साधन है। घी के परणामु जब आकाश में बादल के तले में पहुँचते है तब वहाँ की ठंड के कारण जम जाते हैं, उनके साथ संपर्क में आने वाले बादलो के वाष्प कण भी ठंड परमाणुओं की वजह से भाप की जगह पानी बना जाते है और बरस पड़ते हैं। इन्हीं सब कारणों से आर्य लोग यज्ञ में बहुत सा घी होम करते थे। आश्रमों व गुरूकुलों में यज्ञ प्रतिदिन का नियम था व घरों में भी लोग समय–समय पर यज्ञ करते रहते थे। राजा–महाराजाओं द्वारा भी अनेक प्रकार के यज्ञों का वृतांत मिलता है। इस प्रकार प्रदूषित वातावरण शुद्ध होता रहता था। जब तक इस होम का प्रचार रहा, भारत देश रोगों से रहित व सुखों से पूरित रहा। विभिन्न संस्कारों अनुष्ठानों के समय भी यज्ञ आवश्यक रूप से किया जाता था। आज भी जन्म, विवाह, जनेऊ आदि संस्कारों के समय यज्ञ का विधान है। अंत्येष्टि संस्कार सदैव से महत्वपूर्ण रहा है और आज भी है। इस प्रकार तत्कालीन समय में यज्ञ वायु शुद्धि का प्रमुख साधन था। अब भी यदि यज्ञ का प्रचार हो तो वह प्रदूषण रोकने और रोगों के निवारण में सहायक हो सकता है।[8]

विभिन्न वृक्षों की स्वास्थ्य में महिमा

भारतीय संस्कृति में वनस्पतियों की अपार महिमा है जो पर्यावरण सापेक्ष है। तुलसी, पीपल एवं वट आदि वृक्षों की पूजा व महिमा का उल्लेख हमारे धर्म–ग्रन्थों में मिलता है जो हमारी संस्कृति के पर्यावरण–परक होने की ही पुष्टि करता है। क्योंकि वृक्ष पर्यावरण संतुलन व स्वास्थ्यवर्द्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सर्वविदित है कि तुलसी व नीम कें वृक्ष सदैव जीवनदायी ऑक्सीजन छोड़ते रहते हैं। तुलसी व नीम का प्रयोग कीटाणुनाशक व रोगनाशक औषधि के रूप में किया जाता रहा है। बरगद की

औषधीय उपयोगिता तो सर्वविदित है। संस्कृत में बट, न्यग्रोध, श्रृंगी और बहुपाद जैसे कई नामों से इसके गुण बखाने गए हैं। 'बड़' के नाम से इसी को लोग बडप्पन देते आए हैं। वेदों में इसे 'वहावृक्ष' कहकर महत्ता दी गई है। बरगद भी संस्कृत का ही अपभ्रंश है – 'बड़ा अगद' अर्थात् महौषद।

हमारे पूर्वज केवल दिखावे और शोभा के लिए पेड़ नहीं लगाते थे। उनकी दृष्टि से सबसे पहली बात यह होती थी कि कौन–सा पेड़ मनुष्यता के कल्याण में अधिक उपयोगी है। इसी लिए तालाबों, गाँवों, सड़कों के खुले चौराहों और बीहड़ मार्गो पर वट–वृक्ष लगाए जाते थे ताकि हर कोई इनके पत्तों, जड़ों, जटाओं, फलों और दूध का सेवन करके स्वस्थ्य रहे तथा लंबी आयु भोगे। प्राचीन काल में नीम, पीपल और वट–वृक्ष ही ऐसी डिस्पेंसरिया थी जो रात दिन मानव–कल्याण के लिए खुली रहती थीं। इनके रेशे–रेशे के गुणों से लोग परिचित थे और दवा के तौर पर उनका उपयोग करके सुखी जीवन व्यतीत करते थे।

संसार में या तो भगवान को पुरातन पुरूष कहा गया है या बरगद को पुरातन पेड़ क्योंकि यही एक ऐसा पेड़ है जो हजारों वर्षों तक खड़ा रहता है। जो इस तथ्य को गहराई से समझते हैं, वे भी कई–कई सौ वर्ष जीते रहते हैं। इसके फल खाने वाले पक्षी और इसके पत्ते खाने वाले पशु भी दीर्घायु होते हैं। जिसके पास जैसा गुण होता है वही दूसरों को दे सकता है। बरगद का यथा योग्य सेवन करके मनुष्य भी दीर्घायु जीवी बन सकते हैं।[9]

स्वास्थ्य और आचरण

भारतीय संस्कृति में आचरण का बहुत महत्व रहा है। स्वास्थ्य में भी आचरण की महिमा का व्यापक और विशद विवरण प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मिलता है। परस्पर प्रेम और सद्भाव पूर्ण व्यवहार को स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अथर्ववेद (3.285) में कहा गया है कि जिस घर में परस्पर हितैषी पुण्यात्मा स्त्री–पुरूष नीरोग रहकर विद्या और धन भोगते हैं, वह उनकी नियमवती सुमति देवी का साक्षात् फल होता है। वहाँ पर सब मनुष्य और गौ, घोड़े आदि बहुत काल तक जी कर आपस में उपकारी होते हैं।

खान–पान और स्वास्थ्य

भारतीय संस्कृति में खान–पान को भी मनुष्य जीवन के आचार–विचार, उनके व्यवहार, और जीवन शैली का मूलाधार माना गया है। सात्विक विचारों के लिए शाकाहारी होना अनिवार्य बताया गया है। संतुलित और उत्तम भोजन– स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। जो मनुष्य सर्व रोग हरने वाली बुद्धि और बल के देने वाले भोजन और पान अर्थात् उत्तम वस्तु पीने की कामना करते हैं वे बलिष्ठ वीर होते हैं (ऋग्वेद 2.14.1)। जो अनेक गुणयुक्त पदार्थ, धन व संपदा है, उस श्री व समृद्धि में जो उत्तम से उत्तम है उसका हम सब सेवन करें। मेरी चैतन्य शक्ति! तू मेरी इच्छाओं को पोषण प्रदान कर, तू हमें पराक्रमयुक्त ऊर्जा से संपन्न कर, तू हमें धन–धान्य से संपन्न कर, तू हमें पोषक तत्वों से संपन्न कर।

आयुर्वेद ने किसी समय एक ऐसी सरल सुंदर त्रिदोष प्रणाली की खोज की थी कि यह बात पाश्चात्य वैज्ञानिकों के कभी स्वप्न में भी नहीं आई है। आयुर्वेद भारतीय यौगिक संस्कृति का एक अंग है और यौगिक संस्कृति लौकिक तथा पारलौकिक उन्नति का मूल स्रोत है। भारतीय यौगिक संस्कृति आज से सहस्रों वर्ष पूर्व मानव हितार्थ अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी। पाश्चात्य विज्ञान आधुनिक युग की एक देन हैं, जिसकी अवहेलना भी मनुष्य कों अपने हितार्थ, न करना ही उचित है। अच्छा तो यही है कि मानव निरोगिता के लिए दोनों पद्धतियों का मिश्रण रूप ही काम में लाए ताकि रोगोंत्पत्ति का होना ही समाप्त हो जाए।

भोजन का स्वास्थ्य से गहरा संबंध है। भोजन संबंधी नियमों को भली प्रकार समझे बिना मनुष्य निरोग नहीं रह सकता। मनुष्य भोजन संबंधी जानकारी में जितनी भी अवहेलना करेगा, वह उतना ही अधिक रोगों से पीड़ित भी रहेगा। पीड़ित व्यक्ति स्वयं भी दुख पाता है और उससे संबंधित सभी व्यक्तियों को चाहे शारीरिक कष्ट भले ही न हो, परन्तु मानसिक कष्ट तो सबको ही पहुँचता ही है। इसीलिए अपने को और दूसरों को सुखी बनाने के लिए प्रत्येक मनुष्य का निरोगी तथा स्वस्थ होना परमावश्यक है। आयुर्वेद के विज्ञान का स्तम्भ त्रिदोष ही है। यह वह विज्ञान है जिससे संसार ने बहुत सीखा है और अब बहुत कुछ सीखना शेष है। यह त्रिदोषक सिद्धांत इतना स्पष्ट है कि ग्रामीण लोग भी

पेट में दर्द होने पर वायु का प्रकोप–बोलते हैं। खांसी आने पर कफ विकार के नाम से पुकारते हैं। भोजन न पचने पर– पित्त दोष बताते हैं।[10]

स्नान और स्वास्थ्य

शारीरिक शुद्धि के लिए स्नान की महिमा का वर्णन हमारे ग्रन्थों में किया गया है। स्नान की दैनिक क्रिया मानव को स्वस्थ्य रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। स्नान के बिना शायद ही कोई देश ऐसा हो जहाँ के निवासी रसोई बनाने के पूर्व या भोजन आदि के पूर्व धार्मिक नियम के रूप में स्नान करते हों। इससे शरीर और मन स्वस्थ्य रहते हैं। अन्न का मानव के शारीरिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इससे प्राचीन भारतीय भली–भांति परिचित थे। आयुर्वेदादि ग्रन्थों में भोजन की विभिन्न क्रियाओं का वर्णन मिलता है। भोजन का प्रभाव मानव स्वभाव पर पड़ता है। अतः भोजन के भी तीन प्रकार सात्विक, राजस व तामस बताए गये हैं। गीता में भी कहा गया है कि अपनी प्रकृति के अनुसार ही मनुष्य भोजन करता है व तदनुरूप ही उसका स्वभाव बनता है। मानव शरीर पाँच महाभूतों से बना है अतः भोजन में ऐसे पदार्थों का समावेश होना आवश्यक है जिनसें शरीर के पाँच महाभूतों का परिमाण व्यवस्थित रहे। चरक संहिता में पदार्थों के तीन भाग किए गए हैं– शमन, कोपना तथा स्वस्थ हित। प्राचीन भारतीय विटामिन्स की महत्ता से भी भलीभांति परिचित जान पड़ते थे।

व्यायाम का महत्व व स्वास्थ्य

प्रारंभ से ही भारतीय संस्कृति में दैनिक व्यायाम पर बहुत बल दिया जाता था। रामायण व महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में सर्वसाधारण पुरूषों को भी व्यायाम में विशेष रूचि थी। राजा–महाराजाओं के यहाँ बड़ी–बड़ी व्यायामशालाएँ रहती थी जिनमें कितने ही मल्ल मल्ल विद्या का अभ्यास करते थे। सार्वजनिक मल्ल प्रतियोगिताओं का आयोजन भी समय–समय पर राज्य द्वारा किया जाता था। श्रेष्ठ मल्ल राज्य की ओर से पुरस्कृत होते थे। मानव शरीर के अंगों–प्रत्यंगों के ज्ञान द्वारा उनकी शक्ति बढ़ाने के लिए नाना प्रकार के व्यायाम आयोजित किये जाते थे। इन सब प्रयत्नों की सफलता के लिए व मानव जीवन को नियंत्रित करने के लिए इंद्रिय निग्रह द्वारा आत्म संयम का सिद्धांत अपनाया गया था। यही कारण है कि प्राचीन भारतीय दीर्घायु, ऊँचे बलिष्ठ व सुन्दर देह–दृष्टिवान होते थे जिससे प्राचीन यूनानी आदि लोग उन्हें देख कर आश्चर्य–चकित होते थे व उन्हे देवता समझते थे।

योग और स्वास्थ्य

योग ग्रंथों में प्राणायाम का विधान है ताकि हमारी श्वास क्रिया नियंत्रित रहे और हमारे फुसफुस सशक्त बने। आजकल प्राणायाम व यज्ञ आदि को न अपनाने के कारण ही लोग खांसी, जुकाम, दमा व श्वास संबंधी रोगों से ग्रसित हो रहे हैं जो कि दूषित वायु से फैलते हैं। भारतीय संस्कृति में उत्तम स्वास्थ्य की दृष्टि से ही योग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में यदि विचार करें तों योग रोग भगाने वाली कुछ शारीरिक क्रियाएँ मात्र नहीं है जैसा कि आज पाश्चात्य प्रभाव के कारण समझा जाने लगा है। बल्कि भारतीय संस्कृति में योग मानव उत्थान से संबंधित एक पूर्ण विज्ञान है। यह एक गहन विषय है, जो अपने में न केवल मानव के शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक स्वास्थ्य को समेटे हैं, बल्कि आत्मा से परमात्मा के मिलन का एक साधन है। आत्मिक विकास के जो साधन भारतीय ऋषियों ने अपनाए उसमें अष्टांग योग का बहुत ऊँचा स्थान है। योग द्वारा कुंडलिनी यदि जागृत हो जाए तो मानव असीम शारीरिक व मानसिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है व अपने मस्तिष्क व ज्ञान का अधिकतम उपयोग कर सकता है। यह सब जानते हैं कि मानव अपनी मानसिक क्षमता का एक बहुत थोड़ा भाग ही उपयोग करता है। अतः योग में मानव के विकास व श्रेष्ठता की असीमित संभावनाएँ निहित हैं।

चिकित्सा विज्ञान और स्वास्थ्य

आयुर्वेद के विकास का प्रारंभ भी वैदिक काल से ही होता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में आयुर्वेद विषयक बहुत सी बातों का ज्ञान मिलता है। आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है तथा इसके जनक धन्वन्तरि माने जाते हैं। भारतीयों का सबसे पुराना चिकित्सा ग्रंथ चरक संहिता माना जाता है। इसकी रचना सम्राट कनिष्क के वैद्य चरक ने की थी। इस ग्रंथ का अनुवाद अरबी व फारसी भाषाओं में

भी किया गया। सुश्रुत द्वारा रचित ग्रंथ संहिता भी प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है। सुश्रुत संहिता में 120 अध्याय हैं व इसे छः भागों में बांटा गया है – सूत्र स्थान, निदान स्थान, चिकित्सा स्थान, कल्प स्थान व उत्तर स्थान, शरीर स्थान। इस संहिता में विकृति विज्ञान, शरीर रचना भ्रूण विज्ञान और विष विज्ञान जैसे विषयों की विस्तार से विवेचना की गयी है। इसमें शल्य उपकरणों और शल्य क्रिया संबंधी तरीको पर विशेष अध्याय है।

सुश्रुत महान शल्य चिकित्सक थे। उन्होंने अनेक शल्य तकनीके विकसित की। जो आगे चलकर शल्य चिकित्सों का प्रेरणा स्रोत बनी। अलग–अलग प्रकार की शल्य क्रिया के लिए अलग–अलग प्रकार के यंत्र व सीवन धागे प्रयोग में लाये जाते थे। इस ग्रंथ में मुत्राशय की पथरी, भगंदर, बवासीर के आपरेशन व मोतियाबिंद से लेकर शिशु जन्म में आवश्यक शल्य क्रिया और दंत चिकित्सा तथा अस्थि चिकित्सा की बारीकियों का अनूठा वर्णन है। शल्य क्रिया के समय रोगी को कष्ट न हो इसके लिए ऐसी जड़ी–बूटियाँ खोज निकाली गयी जिससे रोगी गहरी नींद सो जाता था। बहुत से यशस्वी चिकित्साशास्त्रियों ने भारत की पावन भूमि पर जन्म लिया व मानव स्वास्थ्य व कल्याण हेतु अपना जीवन लगाया। आत्रेय, काशपर्णी, चतुकर्ण, पराशर, मेदा, हस्वा आदि विद्वानों ने चिकित्सा संबंधी अनेक उपयोगी ग्रंथों की रचना की।[11] यूनान के चिकित्सकों ने भी भारतीय चिकित्सा विज्ञान से बहुत कुछ सीखा व यूनानी चिकित्सक एकटुआरिस ने भारतीय औषधि त्रिफला की बड़ी सराहना की है। यूनानी चिकित्सक पद्धति के अनेक सिद्धान्त भारतीय चिकित्सों के विचारों पर आधारित हैं।[12]

औषधि विज्ञान और स्वास्थ्य

वेदों में औषधियों के महत्व का गंभीर विवेचना मिलता है। औषषियों के प्रकार, उनके विविध उपयोग और लाभ जनकल्याणकारी है जिनकी आज भी उतनी ही प्रासंगिकता है जितनी वैदिक काल में थी। वेदों में कहा गया है हिम वाले पर्वतों से नदियां ग्रीष्म ऋतु में भी बहती रहती और अन्न आदि औषधों को हरा–भरा करके अनेक विधि से जगत का पोषण करती हैं, इसी प्रकार औषध का औषध, वह ब्रह्म सब के ह्रदय में व्यापक हो रहा है। सब मनुष्य ब्रह्मचर्य सेवन और सुविद्या ग्रहण से शारीरिक और मानसिक रोगों की निवृत्ति करके सदा उपकारी बनें और आनंद भोगे (अथर्ववेद2.3.1)। संसार की सब औषधियों में क्लेशनाशक और रोगनिवारक शक्ति का देने वाला वही औषधि पारब्रह्म है (अथर्ववेद 2.3. 2)। एक अन्य उल्लेख द्रष्टव्य है – जैसे सद्वैव बड़े–बड़े परिश्रम और परीक्षा करके उत्तम औषधों को लाकर रोगों की निवृत्ति करके प्राणियों को स्वस्थ्य करते हैं, वैसे ही ऋषियों ने निर्णय किया है कि उस परमेश्वर ने आदि सृष्टि में ही मानसिक और शारीरिक रोगों की औषधि उत्पन्न कर दी है (अथर्ववेद2.3. 3)।

बौद्ध साहित्य के अध्ययन से भी तत्कालीन आयुर्वेद के विकास का पता चलता है। सम्राट अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि उन्होंने स्थान–स्थान पर औषधालय खुलवाये थे। उस समय जड़ी–बुटियां विदेशों में भी निर्यात की जाती थीं। शल्य कर्म के विकास के भी उल्लेख मिलते है। विनयपिट्टक के महावग्ग में लिखा है कि एक भिक्षु ने भगन्दर रोग पर शल्य कर्म किया। पश्चिमी चिकित्सा की उल्लेखनीय विशेषता शल्य चिकित्सा है। वेबर के अनुसार– शल्य चिकित्या के क्षेत्र में भी प्राचीन भारतीयों ने विशेष प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। यूरोपीय शल्य चिकित्सक उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं जैसे कि नासा संधान कर्म के विषय में नासिका तथा आँखों की विकृतियों को शल्य चिकित्सा से दूर करने में भारतीयों की विशिष्टता को सबने सराहा है।

भारतीय चिकित्सा विज्ञान के आदि गुरू और महान चिकित्सक धन्वन्तरि की रचनाओं के अनेक उद्धरणों से यह भी आभास होता है कि भारतीय चिकित्सा वैक्सीनों का उपयोग भी करते थे जो पशुओं के शरीर में चेचक के विषाणुओं को प्रविष्ट कर तैयार की जाती थी। निरीक्षण, निरूपण और विश्लेषण की अपनी महान क्षमता और नाना प्रकार की जड़ी–बुटियों और पौधों से भरपूर उर्वर देश में अपनी लगन व कठिन स्वाध्याय के बल पर भारतीयों ने चिकित्सा क्षेत्र में उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त की। औषधि विज्ञान व शल्य विज्ञान में प्राचीन भारतीयों ने पर्याप्त प्रवीणता प्राप्त कर ली थी तथ्यों के आधार पर ऐसा माना जा सकता है। रोगों के लक्षणों को समझने व उनका निदान करने की भारतीय वैद्यों की पद्धति अचुक व त्रुटि रहित थी। आज इस पद्धति में विश्वास रखन वाले गिने–चुने विद्वान ही शेष हैं।

भारतीय विज्ञान की पहुंच शरीर रचना, शरीर के विभिन्न अंगों, स्नायुओं, मांसपेशियों, नाड़ियों और तंतुओं से सूक्ष्म ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में थी। हिंदुओं के औषधि शास्त्रों में जड़ी–बूटियों, वनस्पतियों, पशुओं से और खनिज तत्वों से प्राप्त होने वाली असंख्य औषधियों का विस्तार से उल्लेख मिलता है जिनका प्रयोग अनेक चिकित्सक आज भी सफलतापूर्वक कर रहे हैं। औषधियां करने के उनके ढ़ंग अनूठे थे और औषधियों का वर्गीकरण एवं रोगियों को औषधि खिलाने संबंधी विस्तृत निर्देश दिए गए हैं। सफाई, पथापथ्य नियमों तथा आहार पर चिकित्सा के समय विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। इस प्रकार उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में स्वास्थ्य की कितनी महत्ता थी। मानव स्वास्थ्य एवं मानव कल्याण भारतीय संस्कृति की धुरी थी। परंतु शनैः मुगलो के आक्रमण व अंग्रजो की पराधीनता से भारतीय चिकित्सा पद्धति ने कोई विशेष प्रगति नहीं की। पर उस समय भी प्रातः जल्दी उठना, व्यायाम तथा खान–पान संबंधी स्वास्थ्य नियमों का पालन होता रहा। आयुर्वेद व यूनानी दोनो चिकित्सा पद्धतियों प्रयोग में लायी जाती रही।

उपसंहार

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार का ध्यान प्राचीनकाल से चली आ रही चिकित्सा पद्धतियों की ओर गया। स्थान–स्थान पर आयुर्वेद व यूनानी चिकित्सा औषधालय सरकारी खर्च पर खोले गए परन्तु आयुर्वेद में अनुसंधान व शोध पर अभी भी अधिक कार्य नहीं हुआ है। हाल ही में कुछ बड़ी निजी संस्थाएँ अवश्य इस ओर रूचि ले रहीं है। डाबर, झंडु, चरक, वैद्यनाथ व हमदर्द जैसी बड़ी दवा निर्माता कंपनियां स्वदेशी चिकित्सा के शोध व अनुसंधान में अवश्य रूचि ले रही है और इसके अच्छे परिणाम भी सामने आने लगे हैं। इसका कारण यह है कि ऐलोपेथिक दवाओं के कुछ रोगों में दुष्परिणामों से भी लोग अब परिचित हो गए हैं। अतः लोगों का झुकाव धीरे–धीरे आयुर्वेद, प्राकृतिक व अन्य स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों की ओर बढ़ रहा है। यह एक शुभ लक्षण है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का प्रभाव हमारी दिनचर्या पर भी पड़ा है। देर रात तक टी0 वी0 व क्लबों में समय नष्ट करना व सुबह देर से उठना, आहार–विहार में पथ्य–अपथ्य का ध्यान न रखना चाय, काफी तथा अन्य उत्तेजक व मादक द्रव्यों का अधिकाधिक सेवन करना आदि। स्वास्थ्य नियमों के उल्लंघन व बढ़ते प्रदूषण का दुष्प्रभाव यह हुआ है कि आज शहरों में एक पूर्ण स्वस्थ्य व्यक्ति खोजना भी कठिन हो गया है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम युगों से चले आ रहे दैनिक स्वास्थ्य नियमों की महत्ता को पहचानने व स्वीकार करें तथा समय, काल व ऋतु के अनुसार उन स्वास्थ्य नियमों को अपनाएँ। सुगम व सस्ती व लाभप्रद स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों से भरपूर लाभ उठाएँ।

वर्तमान समय में भारतीय जीवन–पद्धति और संस्कृति एक संक्रमणशील युग से गुजर रही है। एक ओर वैज्ञानिक, भौतिकवादी और औद्योगिक विकास का जीवन, भारतीय संस्कृति के परंपरागत मूल्यों को नकार तो नहीं रहा परंतु उन पर प्रश्न चिह्न अवश्य लगा रहा है। दूसरी ओर हमारी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएँ हैं। अतः आशंका इस बात की है कि हम नवीन को स्वीकार किए बिना प्राचीन को भी न खो बैठे व त्रिशंकु के समान अधर में न लटक जाएँ। भारतीय संस्कृति व जीवन पद्धति पर अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव भी तेजी से पड़ रहा है। अतः नवीन व प्राचीन में सामंजस्य की जितनी आवश्यकता आज है कदाचित प्राचीन युगों में नहीं रही। विश्व के जीवन की गति इतनी तीव्र हो गयी है, मूल्य और मान्यताएँ इतने शीघ्र परिवर्तनीय हो गए है कि वात्याचक्र में मार्ग खोजना कठिन हो गया है। अतः हमें समसामायिक समस्याओं से जूझना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है स्वयं को पहचानना।

आत्मिक विकास के महत्व को जितना प्राचीन भारत में समझा गया उतना अन्यत्र कहीं नहीं। आत्मनं विजानीहि का सिद्धान्त प्राचीन ऋषियों ने ही दिया। आज के वैमनस्य एवं हिंसा के दौर में मानवजाति की रक्षा प्राचीन भारतीय सनातन सिद्धांतों के आधार पर ही की जा सकती है। भारतीय संस्कृति में सत्य, अहिंसा व तप की त्रिवेणी आदिकाल से बहती आयी है। विश्व के दूरदर्शी विचारकों का मत है कि भारतीय संस्कृति ही मानवता की रक्षा कर दानव संस्कृति से परित्रस्त विश्व को औपनिषदिक ऋषि, बुद्ध और गाँधी को जन्म देने वाली मानव संस्कृति का अमृत पिला सकती है व विश्व शांति की स्थापना में सहायक हो सकती है। अतः आज आवश्यकता है भारतीय संस्कृति में निहित जीवन मूल्यों को पहचानने की, उन्हें आत्मसात् करने की ताकि स्वस्थ मानव की संकल्पना साकार हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. स्वामी रंगनाथानन्द, परिवर्तनशील समाज के लिए शाश्वत मूल्य (तत्वज्ञान तथा अध्यात्मिकता) रामकृष्ण मठ, नागपुर, 1999
2. नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. डॉ0 त्रिलोकी नाथ क्षत्रिय, वैदिक आवधारणाओं की आधुनिक औद्योगिक युग में उपादेयता, इस्पात भारती, स्टीन अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली
4. वेदप्रकाश सिंह, प्राचीन हिंदु राष्ट्र, आत्माराम एंड संस, प्रथम संस्करण, 1977
5. नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1999
6. डॉ, सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, संस्कार–चन्द्रिका, प्रकाशन विजय कृष्ण लखनपाल, संस्करण, 1990
7. वेदप्रकाश सिंह, प्राचीन हिंदु राष्ट्र, आत्माराम एंड संस, प्रथम संस्करण, 1977
8. सुनील शर्मा, बरगद, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली–6 1992
9. वेदप्रकाश सिंह, प्राचीन हिंदु राष्ट्र, आत्माराम एंड संस, प्रथम संस्करण, 1977
10. सुनील शर्मा, बरगद, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली–6 1992
11. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, राष्ट्र का नव–निर्माण, सन्मार्ग प्रकाशन, संस्करण 1986
12. वेदप्रकाश सिंह, प्राचीन हिंदु राष्ट्र, आत्माराम एंड संस, प्रथम संस्करण, 1977